©2017 IJSRST | Volume 3 | Issue 8 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Science and Technology

"श्रीमद्भगवद्गीता में सनातन धर्म"

दीपचन्द यादव
शोधच्छात्र
संस्कृत विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

श्रीमद्भगवद्गीता का संस्कृत वाङ्मय में प्रमुख स्थान है। सनातन धर्म के महान ग्रन्थों में श्रीमद्भगवद्गीता का नाम बड़ी श्रद्धा के साथ लिया जाता है वस्तुतः यह महान ग्रन्थ महर्षि वेदव्यास द्वारा रचित दुनिया के सबसे बड़े महाकाव्य महाभारत के भीष्मपर्व के अन्तर्गत एक उपनिषद् है। इसमें भगवान श्रीकृष्ण के श्रीमुख से निकली हुई दिव्य वाणी है, जिसमें भगवान श्रीकृष्ण ने विषाद्युक्त अर्जुन को तत्त्वात्मक उपदेश दिया है जिसके भाव अत्यन्त गहन हैं। यह कुल 18 अध्यायों में विभक्त है जिसमें 700 श्लोक दर्शनीय होते हैं। गीता की गणना प्रस्थानत्रयी में की जाती है।

श्रीमद्भगवद्गीता का सर्वातिशायी माहात्म्य इसी बात से समझा जा सकता है कि भगवान् के पाद–पद्म से निकलकर 'विष्णुपदी' नाम से विख्यात भगवती भागीरथी जब त्रिलोक–पावनी हो गईं, तो उनके मुख–पद्म से निकली भगवती गीता आपाताल–ब्रह्मलोक निखिल ब्रह्माण्ड निकाय को तो अवश्य ही पवित्र करने वाली होंगी। वस्तुतः गीता ज्ञानामृत तो वह सर्वातिशायी दुग्धामृत है जिसे श्रीकृष्णसंज्ञक दोग्धा ने सर्वप्रथम अर्जुन संज्ञक बछड़े एवं अनन्तर उनके द्वार से साधक विद्वल्लोक के सेवन हेतु उपनिषद् रुपी गौओं का दुग्धदोहन किया था।

"सर्वोपनिषदो गावो दोग्धा गोपालनन्दनः।
पार्थो वत्सः सुधीर्भोक्ता दुग्धं गीतामृतं महत्।।"

गीता के माहात्म्य में उपनिषदों को गौ और गीता को उसका दुग्ध कहा गया है इसका तात्पर्य यह है कि उपनिषदों की जो अध्यात्म विद्या थी, उसको गीता सर्वांश में स्वीकार करती है। उपनिषदों की अनेक विद्यायें गीता में हैं। जैसे संसार के स्वरूप के सम्बन्ध में अश्वत्य विद्या[1], अनादि अजन्मा ब्रह्म के विषय में अव्ययपुरुष विद्या[2], परा प्रकृति[3] या जीव के विषय में अक्षरपुरुष विद्या और अपरा प्रकृति[4] या भौतिक जगत के विषय में क्षरपुरुष विद्या। इस प्रकार वेदों के ब्रह्मवाद और उपनिषदों के अध्यात्म इन दोनों की विशिष्ट सामग्री गीता में सन्निविष्ट है।

गीता के अट्ठारह अध्यायों में वर्णित विषयों की क्रमागत तारतम्यता अद्भुत है। क्रमप्राप्त संगति अत्यन्त उच्चकोटि की देखने को मिलती है। इसके प्रत्येक अध्याय का अपना अलग–अलग वैशिष्ट्य है। प्रथम अध्याय का नाम अर्जुनविषादयोग, द्वितीय अध्याय का नाम सांख्ययोग, तृतीय अध्याय का नाम कर्मयोग, चतुर्थ अध्याय का नाम ज्ञानकर्मसंन्यास योग है एवं पांचवे अध्याय का नाम कर्मसंन्यासयोग छठवें का नाम आत्मसंयमयोग सातवें का नाम ज्ञानविज्ञानयोग, आठवें अध्याय का नाम अक्षर ब्रह्मयोग, नवें अध्याय का नाम राजगुह्ययोग, दसवें अध्याय का नाम विभूतियोग, 11वें अध्याय का नाम विश्वरुपदर्शन योग, 12वें अध्याय का नाम भक्तियोग, 13वें अध्याय का नाम क्षेत्र–क्षेत्रविभागयोग 14वें अध्याय का नाम गुणत्रयविभागयोग है। 15वें अध्याय का नाम पुरुत्तोत्तम योग। 16वां अध्याय देवासुर सम्पत्ति का विभाग है, 17वें अध्याय का नाम श्रद्धात्रय विभागयोग एवं अन्तिम 18वें अध्याय का नाम मोक्षसंन्यासयोग है।[5]

संसार में मुख्यरूप से चार धर्म प्रचलित हैं–सनातन धर्म, मुस्लिम धर्म, बौद्ध धर्म और ईसाई धर्म। इनमें प्रत्येक धर्म को मानने वालों की संख्या करोड़ों में है। इन चारों धर्मों में भी अवान्तर कई धर्म हैं। सनातन धर्म को छोड़कर शेष तीनों धर्मों के मूल में धर्म चलाने वाला कोई व्यक्ति मिलेगा, जैसे–मुस्लिम धर्म के मूल में मोहम्मद साहब, बौद्ध धर्म के मूल में गौतम बुद्ध और ईसाई धर्म के मूल में ईसा मसीह मिलेंगे। परन्तु सनातन धर्म के मूल में कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा क्योंकि यह धर्म किसी व्यक्ति के द्वारा चलाया हुआ धर्म नहीं है यह तो अनादिकाल से चला आ रहा है। सनातन का अर्थ है शाश्वत या हमेशा बना रहने वाला अर्थात् जिसका न आदि है न अन्त।[6] जैसे भगवान शाश्वत (सनातन) हैं, ऐसे ही सनातन धर्म भी शाश्वत है। भगवान ने तो सनातन धर्म को अपना स्वरूप बताया है।

ब्राह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहममृतस्याव्ययस्म च

शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।।[7]

जिस–जिस युग में जब–जब इस सनातन धर्म का ह्रास होता है अथवा हानि होती है तब–तब भगवान इस धर्म के उत्थान के लिये भगवान स्वयं अवतार लेकर इसकी रक्षा करते हैं।

यदा–यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत।

अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्।।[8]

अर्जुन गीता में भगवान् को सनातन धर्म का रक्षक बताते हुये कहते हैं कि 'सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे' हे भगवान्! आप अक्षय परमात्मा हैं। इस जगत के परम आश्रय हैं, आप शाश्वत धर्म के रक्षक हैं तथा आप अविनाशी सनातन पुरुष हैं, ऐसा मेरा मत है। भगवान और आत्मा का स्वरूप शाश्वत है, सनातन है, अव्यक्त रूप है, अविनाशी है तभी तो भगवान (आप) और आत्मा एक ही लक्षण वाले होते हैं।[9]

एक उपज होती है और एक खोज होती है। जो वस्तु पहले से उपस्थित न हो तो उसकी उपज होती है और जो वस्तु पहले से ही उपस्थित हो तो उसकी खोज होती है। मुस्लिम, बौद्ध और ईसाई–ये तीनों ही धर्म व्यक्ति के मस्तिष्क की उपज हैं, परन्तु सनातन धर्म किसी व्यक्तिविशेष के मस्तिष्क की उपज नहीं बल्कि ऋषियों के द्वारा किया गया अन्वेषण है–

"ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः"

यह धर्म अपने अन्दर कई अलग–अलग उपासना पद्धतियाँ मत, सम्प्रदाय और दर्शन समेटे हुये हैं।[10] वर्तमान में अनुयायियों की संख्या के आधार पर यह विश्व का तीसरा सबसे बड़ा धर्म है और सर्वाधिक उपासक भारत में हैं। इसमें कई देवी–देवताओं की पूजा की जाती है जो भक्त जिस–जिस देवता के स्वरूप को श्रद्धा से पूजना चाहता है, मैं उसी देवता के प्रति उसकी श्रद्धा को स्थिर करता हूँ।[11]

यो यो यां यां तनुं भक्तः श्रद्धयार्चितुमिच्छति।
तस्य तस्याचलां श्रद्धां तामेव विदधाम्यहम्।।

अन्य सभी धर्म तथा मत–मतान्तर भी इसी सनातन धर्म से उत्पन्न हुये हैं। इसलिये उन धर्मों में मनुष्यों के कल्याण के लिये जो साधन बताये गये हैं, उनको भी सनातन धर्म की ही देन मानना चाहिए। अतः उन धर्मों में बताये गये अनुष्ठानों का भी निष्कामभाव से कर्तव्य समझकर पालन करना चाहिए।

प्रत्येक धर्म में कुधर्म, अधर्म और परधर्म तीनों होते हैं। दूसरों के अनिष्ट का भाव, कूटनीति आदि 'धर्म में कुधर्म' है, यज्ञ में, पशुबलि देना आदि 'धर्म में अधर्म है' है, और जो अपने लिये निषिद्ध है, ऐसा दूसरे वर्ण आदि का धर्म 'धर्म में परधर्म' है। कुधर्म, अधर्म और परधर्म–इन तीनों से कल्याण नहीं होता। कल्याण उस धर्म से होता है, जिसमें अपने स्वार्थ और अभिमान का त्याग एवं दूसरे का वर्तमान और भविष्य में हित होता है। प्राणिमात्र के कल्याण के लिये जितना गहरा विचार सनातन धर्म में किया गया है, उतना दूसरे धर्मों में नहीं मिलता है। सनातन धर्म के सभी सिद्धान्त पूर्णतया वैज्ञानिक और कल्याण करने वाले हैं।

सनातन धर्म में जितने साधन कहे गये हैं अथवा नियम बताये गये हैं, वे भी सभी सनातन हैं और वे अनादिकाल से चलते आ रहे हैं, जैसे भगवान् श्रीकृष्ण ने कर्मयोग को अव्यय कहा है[12] तथा शुक्ल एवं कृष्ण दोनों गतियों (मार्गों) को भी सनातन कहा है।[13]

शुक्लकृष्णे गती ह्येते जगतः शाश्वते मते
एकया यात्यनावृत्तिमन्ययावर्तते पुनः।।

अर्थात् शुक्ल और कृष्ण दोनों प्रकार की गतियाँ जगत में शाश्वत हैं अर्थात् इनका (साधन का) कभी विनाश नहीं होता। शुक्ल अवस्था में प्रयाण करने वाला पीछे न आने वाली परमगति को प्राप्त होता है तो

दूसरी अवस्था कृष्ण में, जिसमें क्षीण प्रकाश तथा अभी कालिमा है ऐसी अवस्था को गया हुआ पीछे लौटता है, जन्म लेता है, जब तक पूर्ण प्रकाश नहीं मिलता तब तक उसे भजन करना पड़ता है।

श्रीमद्भगवद्गीता में परमात्मा को सनातन तो माना गया है। साथ ही जीवात्मा को भी सनातन धर्म के रूप में स्वीकार किया गया है।

"ममैवांशो जीवलोके जीवभूतः सनातनः।

मनः षष्ठानीन्द्रियाणि प्रकृतिस्थानि कर्षति।।"

अर्थात् इस दैहिक लोक में यह जीवात्मा मेरा ही सनातन अंश है और यही इस त्रिगुणमयी माया में स्थित मन और पाँचों इन्द्रियों को आकर्षित करता है।[14]

धर्म को सनातन की संज्ञा देते हुए भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि हे अर्जुन! उस अविनाशी ब्रह्म का (जिसमें वह गुणातीन होकर एकीभाव से प्रवेश करता है), अमृत का शाश्वत धर्म का और उस अखण्ड एकरस आनन्द का मैं ही आश्रय हूँ। अब यदि आपको अव्यक्त, अविनाशी, ब्रह्म, शाश्वत, धर्म, अखण्ड, एकरस आनन्द की आवश्यकता है तो किसी तत्त्वस्थित अव्यक्तस्थित महापुरुष की शरण लें। उनके द्वारा ही यह उद्धार सम्भव है।[15]

अर्थात् कहने का तात्पर्य यह है कि सनातन धर्म में सभी चीजें सनातन हैं और यह अनादिकाल से हैं। सभी धर्मों में और उनके नियमों में एकता कभी नहीं हो सकती उनमें कुछ न कुछ भिन्नता अवश्य ही रहेगी परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि इन धर्मों के द्वारा जिस तत्त्व की प्राप्ति की जाती है उसमें कभी भिन्नता हो ही नहीं सकती। वह तो सर्वत्र एक ही है।

जब तक साधन करने वालों का संसार के साथ सम्बन्ध रहता है, तब तक मतभेद, वाद–विवाद रहता है। परन्तु तत्त्व की प्राप्ति होने पर तत्त्वभेद नहीं रहता।

जो लोग धर्म इत्यादि के नाम पर केवल अपनी सत्ता अथवा संगठन बनाने में लगे रहते हैं उनमें तत्त्व की सच्ची जिज्ञासा नहीं होती और संगठन बनाने में उनकी कोई महत्ता बढ़ती भी नहीं। संगठन या टोली बनाने वाले व्यक्ति सभी धर्मों में विद्यमान हैं। वे धर्म के नाम पर अपने व्यक्तित्व की ही पूजा करते–करवाते हैं। परन्तु जिनमें तत्त्व की सच्ची जिज्ञासा होती है वे कोई टोली या संगठन नहीं बनाते। वे तो तत्त्व की खोज करते हैं। गीता में भी कहीं टोली–संगठन को मुख्यता नहीं दी गयी है बल्कि जीव के कल्याण को मुख्यता दी गयी है। गीता के अनुसार किसी भी धर्म पर विश्वास करने वाला व्यक्ति निष्कामभावपूर्वक अपने कर्तव्य का पालन करके अपना कल्याण कर सकता है। गीता सनातन धर्म को

आदर देते हुए भी किसी धर्म का आग्रह नहीं करती और किसी धर्म का विरोध भी नहीं करती अतः स्पष्ट है कि गीता सार्वभौम ग्रन्थ है।

सन्दर्भ सूची–

1 श्रीमद्भगवद्गीता–15/14

2 श्रीमद्भगवद्गीता–11/18

3 अपरेयमितस्त्वन्यां प्रकृतिं विद्धि मे पराम्।
जीवभूतां महाबाहो ययेदं धार्यते जगत्।। (गीता–7/5)

4 भूमिरापोऽनलो वायुः खं मनो बुद्धिरेव च।
अहंकार इतीयं मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा।। (गीता–7/4)

5 श्रीमद्भगवद्गीता–गीता प्रेस, गोरखपुर, पृष्ठ 9–12

6 सनातनमेनमहुरुताद्या स्यात पुनर्व्। (अथर्ववेद–10/8/23)

7 श्रीमद्भगवद्गीता–4/27

8 श्रीमद्भगवद्गीता–4/7–8

9 त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे। (गीता–11/18)

10 Heterodox Hinduism : SC does well to uphold plural, electric character of the faith.

11 श्रीमद्भगवद्गीता–7/21

12 श्रीमद्भगवद्गीता–4/1

13 श्रीमद्भगवद्गीता–8/26

14 श्रीमद्भगवद्गीता–15/7

15 ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाहममृतस्याव्ययस्य च
शाश्वतस्य च धर्मस्य सुखस्यैकान्तिकस्य च।। (गीता–14/27)